Introduction

:: प्राक्कथन ::

माध्यमिक -शिक्षा के दौरान ही कुछ विषयों के प्रति मेरी विशेष अभिरूचि हो चली थी । उन विषयों में हिन्दी , गुजराती , अंग्रेजी आदि भाषा और साहित्य के विषय तथा इतिहास और समाजशास्त्र के विषयों की ओर मेरी विशेष रूझान थी । गणित और विज्ञान की तुलना में इन विषयों में मेरा मन विशेष रूप से रमता था । फलतः समाचार-पत्रों में भी उन बातों को मैं विशेष रूप से पढ़ता था , जिनका सम्बन्ध साहित्य , समाजशास्त्र इत्यादि से रहता हो । विज्ञान में उतनी गति न होने के बावजूद समाजशास्त्रीय विषयों को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने-समझने की दृष्टि क्रमशः विकसित हो रही थी । अतएव जब मैंने विश्वविद्यालयीन शिक्षा के लिए महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में अपना दाखिला लिया तब कला-संकाय के उन विषयों पर ही मेरा ध्यान अधिक आकृष्ट रहा । यदि विश्वविद्यालयीन शिक्षा को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो वह पुरानी और अनेक बार उद्धृत बात हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है -- " नो नालेज विधाउट कालेज " -- अर्थात् महाविद्यालय में कदम रखे बिना हमारी दृष्टि में व्यापकता और गहराई नहीं आती । चीजों को देखने-समझने की एक स्वतंत्र , तटस्थ , स्थिति-सापेक्ष एवं स्थिति-निरपेक्ष , अनाविल , न्याय-विवेक-मूलक दृष्टि (विज़न) का विकास ही किसी छात्र को किसी विश्वविद्यालय का स्नातक कहलाने की उपयुक्तता रख सकता है । अतः मेरा लक्ष्य केवल पाठ्य-पुस्तकीय विद्या नहीं रहा । किन्तु ज्ञान-विज्ञान की नयी-नव्य क्षितिजों को छूने का और उनके पार जाने का रहा है । सद्भाग्य से विश्वविद्यालयीन शिक्षा में मुझे कुछ ऐसे गुरूओं की विशेष कृपा हासिल हुई ।

अभिप्राय यह कि काव्य-साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों - शास्त्रों में भी मेरी रूचि रही । दूसरे शब्दों में कहें

तो काव्य और शास्त्र उभय में मेरी गति बढ़ती रही । कहा भी गया है — " काव्य-शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धिमताम् । " कविकुलगुरु (आधुनिक संदर्भ में) रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में जिन्होंने काव्य और शास्त्र दोनों को उनका भाग्य सर्वोपरि है ; जिन्होंने केवल काव्य (साहित्य) पढ़ा है और शास्त्र नहीं उनके भाग्य को हम मध्यम कक्षा का कह सकते हैं ; किन्तु जिन्होंने केवल शास्त्र पढ़ा है और काव्य या साहित्य नहीं उनका भाग्य तो मंदातिमंद है । जाहिर है यहां काव्य-साहित्य को शास्त्र से ऊंचा दर्जा दिया गया है । परन्तु शास्त्र को सराहा भी गया है , उन अर्थों में कि जिन्होंने काव्य के साथ शास्त्र भी पढ़ा है उनका भाग्य तो सर्वोपरि है । मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूं , क्योंकि यत्किंचित् ही सही पर दोनों को पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है । दूसरे बी.ए. से ही मुझे प्रोफेसर देसाई साहब के अध्यापन का लाभ मिला, जिनके कारण मेरी सोच एवं दृष्टि को एक व्यापकता मिली । चाहे व्याकरण हो , चाहे भाषाविज्ञान , चाहे हिन्दी साहित्य का इतिहास , या चाहे किसी उपन्यास का अध्ययन उनकी चर्चाओं में समाजशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक , ऐतिहासिक-पौराणिक-वैश्विक संदर्भ मिलते ही थे । अतः तभी से मैंने सोच लिया था कि यदि मुझे एम.ए. के उपरान्त शोध-कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ , तो मैं अपना कार्य देसाई साहब के मार्गदर्शन में ही करूंगा ।

और यही कारण है कि साहित्य में उपन्यास और कहानी विधा की ओर मेरा सविशेष झुकाव रहा । फलतः बी.ए. में विशेष साहित्यकार में मैंने "प्रेमचंद" का वरण किया । अपनी उसी दृष्टि के कारण समस्यामूलक उपन्यासों तथा कहानियों की ओर मैं अधिक आकृष्ट होता था । " कला कला के लिए " वाले कुछ भी कहें पर साहित्यिक रचनाओं में कोई-न-कोई मानव-समस्या तो रहती ही है , चाहे उसका स्वरूप सूक्ष्म हो , चाहे प्रच्छन्न हो ; और समस्याएं भी सामाजिक , पारिवारिक , आर्थिक नहीं होतीं , वे वैज्ञानिक ,

मेरा मतलब मनोवैज्ञानिक भी हो सकती हैं , शैक्षिक व सांस्कृतिक भी हो सकती हैं । फलतः प्रेमचंद के अध्ययन में मेरा मन खूब डूबा । बी.ए. में उनके दो उपन्यास और "मानसरोवर भाग-1 " में संकलित कहानियां पाठ्यक्रम में थीं । दो उपन्यासों में "सेवासदन" और "संक्षिप्त गोदान " थे । इन दोनों उपन्यासों में हमें प्रेमचन्द की वस्तुवादी सर्वग्रासी दृष्टि का परिचय मिला । प्रेमचंद ने उर्दू के किस्सागो रतननाथ सरसार को खूब पढ़ा और पचाया था । समाज को देखने का वही फड़कता हुआ अंदाज़ हमें यहां भी मिलता है । कहने को "सेवासदन" प्रेमचंदजी का हिन्दी में प्रथम प्रकाश प्रकाशित उपन्यास है , किन्तु सामाजिकसमस्याओं , उसकी बीमारियों तथा एतद्विषयक उनकी चिकित्सक दृष्टि कमाल की है । पहले ही उपन्यास में उन्होंने हिन्दी जगत में अपना सिक्का गालिब कर लिया ।

अपने इसी उपन्यास में उन्होंने दहेज समस्या , अनमेल विवाह की xxxxx× समस्या , नारी-शिक्षा की समस्या , वेश्या-समस्या , हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या , सामाजिक-धार्मिक नेताओं के चरित्र की समस्या , हिन्दी साहित्य की दरिद्रता की समस्या जैसी अनेकों समस्याओं का भलीभांति आकलन किया है । डा. रामदरश मिश्र के शब्दों में " "सेवासदन" उपन्यास कला और समस्याओं की पकड़ तथा चित्रण दोनों दृष्टियों से हिन्दी का पहला परिपक्व उपन्यास है । " ॥ हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा " : पृ. 44 ॥ डा. रामविलास शर्मा ने इस उपन्यास के प्रकाशन के उपरांत लिखा था — " "चन्द्रकान्ता" और "तिलस्मे होशरूबा " के पढ़ने वाले लाखों थे । प्रेमचंद ने इन लाखों पाठकों को "सेवासदन" का पाठक बनाया । यह उनका युगान्तकारी काम था । प्रेमचंद ने "चन्द्रकान्ता" के पाठकों को न केवल अपनी ओर खींचा , "चन्द्रकान्ता" में अरूचि भी पैदा की , जन-रूचि के लिए उन्होंने नए मापदण्ड कायम किए और साहित्य के नये पाठक और पाठिकाएं भी पैदा किए । यह उनकी जबरदस्त सफलता थी । ॥ प्रेमचंद और xxxx×

उनका युग : पृ. 31 ॥

"गोदान" तो कृषक-जीवन का महाकाव्य माना जाता है । ग्रामीण-जीवन और कृषक-जीवन से जुड़ी कोई ऐसी समस्या नहीं होगी जिसका निरूपण "गोदान" में न हुआ हो । एम.ए. में वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में मैंने उपन्यास का चयन किया था । वहां भी ऐसे कई उपन्यास पाठ्यक्रम में थे जिनमें कोई-न-कोई सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक समस्या केन्द्र में रही है । यहां मैं कथा-साहित्य की समस्यामूलकता पर विशेष तवज्जो इसलिए दे रहा हूं कि उससे साहित्य के अध्ययन के प्रति जो मेरी दृष्टि है, वह स्पष्ट हो रही है । अंततः एम.ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी के साथ उपलब्ध की । वह साल सन् 1999 का था । उसके पश्चात् मैंने सन् 2001 में बी.एड. की उपाधि प्राप्त की । सन् 2001 से 2002 के दौरान मैं अपने पी-एच.डी. शोध-कार्य की तैयारी में लगा रहा ।

जब सन् 2001 में देसाई साहब के सामने मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने बताया कि उसके लिए मुझे एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी । परन्तु उस एक वर्ष के दरमियान हमारे बीच अनेक बैठकें हुईं जिसमें उन्होंने मुझे शोध-विधि, शोध-प्रक्रिया आदि के संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण बातें बताईं । सर्वप्रथम तो उन्होंने मुझे आदेश दिया कि हंसा मेहता लायब्रेरी में जाकर मैं कुछ शोध-प्रबंधों को देखूं और उसकी विधि को समझूं । तत्पश्चात् उन्होंने डा. नगेन्द्र, डा. बी.एच. राजूरकर, डा. रवीन्द्र श्रीवास्तव, गुजराती के महान संशोधक एवं विद्वान आचार्य के.का. शास्त्री प्रभृति के शोध-संशोधन तथा अनुसंधान विषयक कतिपय ग्रन्थों को पढ़ जाने का आदेश दिया । इतनी पूर्व-तैयारी के पश्चात् उन्होंने कुछ शोध-प्रबंधों को सामने रखकर शोध-प्रबंध लिखने की वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक विधि को समझाते हुए शोध-प्रबंध में अध्यायीकरण, संदर्भ-संकेत दर्शाने की प्रविधि, सहायक-ग्रन्थ सूची ॥ Bibliography ॥ में अकारादि-क्रम का महत्त्व इत्यादि तथ्यों की सोदाहरण समझ प्रदान की । उसके बाद

सन् 2003 में निम्नलिखित विषय को लेकर पी-एच.डी. शोध-कार्य हेतु मेरा पंजीकरण हुआ — " हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वेश्या-जीवन : एक अध्ययन ।"

पंजीकरण के उपरांत मैंने उपजीव्य ग्रन्थों तथा एतद्विषयक सहायक ग्रन्थों का अध्ययन प्रारंभ किया । जैसा कि मैंने पहले निर्दिष्ट किया है कि साहित्य के अध्ययन में , विशेषतः उपन्यास-साहित्य के अध्ययन में , शास्त्रगत अभिगम के कारण उसकी समस्यामूलकता पर मेरा विशेष ध्यान रहता था । अतः मैंने अपने मन में निश्चित किया था कि आगे चलकर किसी एक समस्या को लेकर मुझे अपना शोध-कार्य करना होगा । "सेवासदन" उपन्यास बी.ए. में पढ़ा ही था । इस उपन्यास की नायिका सुमन ने मेरा विशेष ध्यान आकृष्ट किया था और इसलिए ही एम.ए. के उपरान्त सन् 1999 से 2003 तक की कालावधि में जब-जब मुझे समय मिला मैंने उपन्यासों में निरूपित वेश्या-समस्या को केन्द्र में रखते हुए काफी कुछ अध्ययन किया था और आवश्यक नोट्स भी लिए थे । मेरा यह पूर्व-परिश्रम बाद में काम में आया । अन्ततः तीन साल के कठोर परिश्रम , अध्ययन , अनुसंधान के उपरान्त इस मकाम पर पहुंचा हूं । अध्ययन की सुविधा तथा शोध-प्रबंध की समुपयुक्त नियोजना हेतु उसे निम्न-लिखित सात अध्यायों में विभक्त ~~xxxx~~ किया है —

§1§ अध्याय - एक : विषय-प्रवेश
§2§ अध्याय - दो : वेश्या-जीवन के विभिन्न आयाम
§3§ अध्याय - तीन : वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास §1§
§4§ अध्याय- चार : ~~xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx~~ वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास §2§
§5§ अध्याय - पांच : आलोच्य उपन्यासों के आधार पर वेश्याओं की विभिन्न कोटियां और उनके जीवन की

प्रमुख समस्याएं ।

§6§ अध्याय - छः : वेश्या-समाज : परिवेश एवं भाषा ।

§7§ अध्याय - सात : उपसंहार

प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश " का है । उसमें विषय को प्रवर्तित करते हुए उपन्यास और यथार्थ के सम्बन्ध को स्थापित किया गया है । चूंकि उपन्यास विधा का उद्भव पश्चिम में हुआ है, अतः पाश्चात्य एवं भारतीय, विशेषतः हिन्दी के, औपन्यासिक आलोचकों की लगभग बारह-तेरह उपन्यास-विषयक परिभाषाओं को देते हुए उपन्यास-विधा के व्यावर्तक लक्षण के रूप में यथार्थ की विभावना को उकेरा गया है । प्रस्तुत प्रबंध का सम्बन्ध एक मानवीय समस्या से है, परिणामतः यहां उपन्यास और मानवीय समस्याओं के सम्बन्ध को भी रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है । उपन्यास की कथावस्तु के संदर्भ में प्रायः सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि उसमें "नवीनता" और "मौलिकता" का समावेश होना चाहिए। उपन्यास में यह नवीनता और मौलिकता नवीन समस्याओं के आकलन के कारण आती है । अतः इस अध्याय में यह निरूपित करने का एक संनिष्ठ प्रयास किया गया है कि किस प्रकार समाज में नवीन परिस्थितियों के निर्मित होने पर उपन्यास में भी नवीन समस्याएं आयी हैं और इस प्रकार उपन्यास का बड़ा गहरा सम्बन्ध सामाजिक -युगबोध से है । यहां बहुत संक्षेप में हिन्दी-उपन्यास के विकास को भी चिह्नित किया गया है । प्रेमचंद हिन्दी उपन्यास-साहित्य के मेरूदण्ड हैं, अतः हिन्दी उपन्यास-साहित्य के विकास के विभिन्न सोपानों में उनके नाम को केन्द्रस्थ रखा गया है, जैसे पूर्व-प्रेमचंदकाल, प्रेमचंदकाल, प्रेमचन्दोत्तर-काल आदि-आदि । प्रेमचंदोत्तरकाल को पुनः स्वतंत्रता-पूर्व काल, स्वातंत्र्योत्तरकाल, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास, समकालीन हिन्दी उपन्यास आदि चार खण्डों में विभक्त किया है । इसी अध्याय के अन्तर्गत वेश्या-समस्या के के स्वरूप को भी दर्शाने की चेष्टा

हुई है । उसमें यह रेखांकित किया गया है कि किस प्रकार मानवीय सभ्यता का यह प्राचीनतम व्यवसाय आज तक चला आया है और किस प्रकार उसके बाह्य रूप तथा ढांचे में परिवर्तन आता गया है । तत्पश्चात् हिन्दी उपन्यास के विभिन्न कालों में वेश्या-समस्या के निरूपण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी की गई है । अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्यायगत निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है । अध्याय के अन्त में संदर्भानुक्रम प्रस्तुत है । संदर्भ-संकेत (पाद-टिप्पणियाँ -- फुट-नोट्स) बताने की तीन विधियाँ प्रचलित हैं -- एक तो प्रत्येक पृष्ठ के नीचे कुछ "स्पेस" देकर उनको वहीं उल्लिखित किया जाय , दूसरे समग्र अध्याय में संदर्भ-संकेतों को क्रमांकित किया जाए और अध्याय के अन्त में उसे बताया जाए , तीसरे प्रबंध के अन्त में प्रत्येक अध्याय की टिप्पणियों को क्रम से बताया जाए । हमने टंकण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए दूसरी विधि का प्रयोग किया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का मूल सरोकार तो वेश्या-जीवन और अतएव वेश्या-समस्या है , फलतः द्वितीय अध्याय में हमने वेश्या-जीवन के विभिन्न पक्षों और आयामों को उद्घाटित किया है । प्रस्तुत अध्याय में हमने वेश्या-जीवन और वेश्या-समाज से सम्बद्ध अनेक पक्षों पर विचार किया है , जैसे कि -- वेश्यावृत्ति की परिभाषा , वेश्या-वृत्ति के कारण , वेश्यावृत्ति के कुछ अन्य कारक , भारत में वेश्यावृत्ति , मुंबई की वेश्याओं पर किया गया अध्ययन , आल इण्डिया मोरल एण्ड सोशल हाइजीन एसोसियेशन का सर्वेक्षण , वेश्याओं के प्रकार आदि-आदि । वेश्यावृत्ति के कारणों में लगभग 20-22 कारणों को रेखांकित किया गया है । वेश्यावृत्ति के अन्य कारकों में चार का उल्लेख किया गया है । वेश्यावृत्ति के दुष्प्रभावों पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा हुई है । प्रमुखतया तीन आधारों पर वेश्याओं की कोटियों को वर्गीकृत किया है ।

यहाँ हमें एक बात की ओर लक्ष्य देना है और वह यह कि वेश्याओं के प्रति हमारी दृष्टि को बदलना होगा । "वेश्या" शब्द के कान में पड़ते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, जबकि उन्हें सबसे ज्यादा सहानुभूति की आवश्यकता है । इस अध्याय में उपर्युक्त मुद्दों की पड़ताल के लिए हमने एलियट एण्ड मेरिल, हेवलोक एलिस, बोंगर, क्लीनार्ड, के. डेविस, वात्स्यायन, डा. एस.डी. पुणेकर, डा. आर.के मुखर्जी जैसे पाश्चात्य एवं प्राच्य विद्वानों, समाजशास्त्रियों की "ओथोरिटी" को अपने अध्ययन का आधार बनाया है । इनके अतिरिक्त विविध सर्वेक्षणों के अध्ययन को भी समाविष्ट किया है । इस प्रकार यह अध्याय हमारे परवर्ती अध्यायों के लिए आधारभूत सामग्री जुटाता है । "जहाज के पंछी" के रूपक के अनुसार बीच-बीच में दृष्टि एतद्विषयक उपन्यासों पर भी गई है, किन्तु केन्द्र में यहाँ शास्त्र रहा है ।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हमने वेश्या-जीवन पर आधारित या जिनमें वेश्या-जीवन का चित्रण उपलब्ध है ऐसे लगभग छत्तीस उपन्यासों का अध्ययन व विश्लेषण इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वेश्या-जीवन के तमाम पहलू परत-दर-परत खुलते चले गए हैं । चतुर्थ अध्याय के अन्त में कुछ ऐसे उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा की गई है, जिनकी विस्तृत चर्चा नहीं हो पायी है । इस प्रकार के लगभग पचीस उपन्यास हैं । यों कुल-मिलाकर लगभग साठ उपन्यासों का लेखा-जोखा इन दो अध्यायों में दिया गया है । उपन्यासों के नाम का उल्लेख "अनुक्रमणिका" के अन्तर्गत प्रस्तुत है ।

पांचवे अध्याय में आलोच्य उपन्यासों के आधार पर वेश्याओं की विभिन्न कोटियों और उनके जीवन की प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है । इसके विशिष्ट आयाम और पक्ष की विस्तृत ब्यौरेवार तफसील भी "अनुक्रमणिका" में दी गई है ।

छठे अध्याय में वेश्या-समाज , उनके परिवेश और उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा पर विचार किया गया है । वेश्या-समाज में तमाम प्रकार व कोटियों की वेश्याएं , इस व्यवसाय को चलाने वाले लोग , दलाल, भड़वे , बिचौलिये , वेश्याओं की संतानें और कईबार उनके पति या प्रेमी आदि का समावेश होता है । सोनागाछी [कलकत्ता] में वेश्याओं के साथ जो उनके पति या प्रेमी रहते हैं उनको "बाबू" कहा जाता है । वेश्याओं के परिवेश को भी अलग-अलग आयामों में देखा-परखा गया है । हाई-फाई प्रकार की वेश्याओं को छोड़कर ज्यादातर वेश्याएं गंदी , घिनौनी झोंपड़पट्टियों और लालबत्ती विस्तारों में रहती हैं । उनके मुहल्ले और कमरे बड़े गन्दे , घिनौने , सिलनवाले और अंधेरे होते हैं । कई बार तो वहां दिन में भी बत्ती जलानी पड़ती है । कुछ वेश्याएं किसी एक बड़े मकान में रहती हैं । वहां एक-एक कमरे में कई-कई वेश्याओं को साथ में रहना पड़ता है । कोई पुरानी , तजुर्बेकार , खड्डूस वेश्या कई बार इनकी देखभाल करती हैं । जिनको परिवेश के अनुसार "मौसी" , "खाला" , "मालकिन " या "मैडम" कहा जाता है । सुपर-डुपर क्लास की प्रथम वर्ग की वेश्याएं , मध्य-वर्गीय और नौकरीपेशा लोगों के लिए मध्यम कक्षा की वेश्याएं और मजदूर , कारीगर , दस्तकार , मिस्त्री , ड्राइवर , रिक्शा चलाने-वाले , रोजाना रोटी-रोजी कमाने वाले तथा तीसरे-चौथे दर्जे की नौकरी करने वाले चपरासी , सफाई कामदार जैसे लोगों के लिए तीसरे दर्जे की सस्ती-चालू वेश्याएं होती हैं । अतः इन त्रि-स्तरीय वेश्याओं का परिवेश भी उनके अनुरूप होता है ।

प्रस्तुत अध्याय में वेश्याओं द्वारा प्रयुक्त भाषा की भी चर्चा की गई है । अध्याय के इस खण्ड को चार शीर्षकों के अंतर्गत रखा गया है ताकि इसका सम्यक् विवेचन हो सके :-- /क/ सामान्य या लेखकीय भाषा , /2/ कोलकाता , विशेषतः सोनागाछी की वेश्याओं की भाषा , /3/ मुंबई की झोंपड़पट्टी की वेश्याओं की

भाषा और /4/ वेश्या-समाज में प्रचलित कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्द । इन शब्दों के शाब्दिक अर्थ नहीं लिए जाते । उस परिवेश से परिचित लोगों को ही उसकी मालूमात होती है ।

सातवां अध्याय "उपसंहार" (Epilogue) का है । कई विद्वान उसे पृथक अध्याय नहीं मानते और शोध-प्रबंध के एक परिशिष्ट के रूप में उसे प्रस्तुत करते हैं । किन्तु मेरे निर्देशक प्रोफेसर पारूकान्त देसाई साहब ने प्रारंभ में ही इस अध्याय के अपरिहार्य महत्त्व के संदर्भ में मुझे बता दिया था । "उपसंहार" का अध्याय अपने आकार में भले ही छोटा हो , किन्तु "छोटे हैं पर गुण बड़े " वाली उक्ति को सार्थक करता है । बिना "उपसंहार" के कोई शोध-प्रबंध , शोध-प्रबंध नहीं होता । इसमें पूरे शोध-प्रबंध का तारतम्य , उसका निचोड़ , उसका नवनीत प्रस्तुत किया जाता है । उसमें कोई नया मुद्दा नहीं उठाया जाता और यथासंभव उसमें कोई संदर्भ-संकेत या पादटिप्पणी भी नहीं होनी चाहिए । यहां बहुत संक्षेप में प्रबंध की उपादेयता , उसकी उपलब्धियाँ और भविष्यत् संभावनाओं को संकेतित किया जाता है ।

"उपसंहार" को छोड़कर शेष सभी अध्यायों में अध्याय के उपरान्त समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा उन-उन अध्यायों के निष्कर्षों को भी दिया गया है । प्रत्येक अध्याय के अंत में "संदर्भानुक्रम" प्रस्तुत किया है । शोध-प्रबंध के अन्त में "संदर्भिका " (Bibliography) के अंतर्गत चार परिशिष्टों में क्रमशः आलोच्य उपन्यासों की सूची , हिन्दी सहायक-ग्रन्थों की सूची , अंग्रेजी के सहायक-ग्रन्थों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची अकारादिक्रम से प्रस्तुत की गई है ।

इस कार्य को सुचारू रूप से मैं अंजाम दे सका उसके पीछे अनेक महानुभावों , सज्जनों एवं सन्नारियों , विद्वानों तथा विदुषियों, सुहृद मित्रों तथा संबंधियों का प्रत्यक्ष वा परोक्ष योगदान रहा है । उन सबके प्रति मैं श्रद्धावनत हूं । प्रबंध में जिन विद्वानों एवं विदुषियों

के ग्रन्थों या लेखों से मैंने सहायता ली है , उन सबके प्रति मैं अपनी श्रद्धा-भक्ति निवेदित करता हूं ।

शोध-प्रबंध का कार्य बहुआयामी होता है । उसमें विषय-वस्तु के विभिन्न आयामों और कोणों को देखना होता है । अतः वह अत्यन्त परिश्रम-साध्य कार्य है । फलतः उसमें अनुसंधित्सु के धैर्य एवं तितिक्षा की परीक्षा होती है । अतः शोध की इस समग्र प्रक्रिया में मुझे मेरे परिवार-जनों से प्रोत्साहन व प्रेरणा मिलते रहे हैं । किन्तु वे तो मेरे परिवार वाले हैं , उनके प्रति आभार व्यक्त करना उपयुक्त न होगा । किन्तु इस अवसर पर मैं अपने स्वर्गीय पिताश्री (जिनका छत्र मैं बचपन में ही गंवा चुका था) तथा मातुश्री मणिबेन कहार के आशीर्वाद की कामना करता हूं । मेरे भाई- बांधवों तथा जाति-बिरादरी के लोगों ने भी इस कार्य के लिए मुझे निरंतर प्रोत्साहित किया है , अतः उनकी भाव-प्रतिश्रुतता का स्मरण मुझे सदैव रहेगा ।

देसाई साहब अपने कार्य-काल में गुजरात तथा अन्य हिन्दी प्रदेश के विद्वानों को व्याख्यान हेतु आमंत्रित करते रहे हैं । उनमें प्रोफेसर शिवकुमार मिश्र , प्रो. मदनगोपाल गुप्त , प्रो. अम्बाशंकर नागर , प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी , प्रो. चौथेराम यादव , प्रो. नाम-वरसिंह , डा. वीरेन्द्र यादव , प्रो. कुंवरपालसिंह , डा. कान्तिमोहन आदि उल्लेखनीय हैं । उनके व्याख्यानों तथा परामर्शों से मैं लाभान्वित हुआ हूं । इनके अतिरिक्त साम्प्रत-समय में गुजरात के आचार्यगण में प्रो. मालतीबेन दुबे , प्रो. रंजना अरगड़े , प्रो. नवनीत चौहान , प्रो. एस.पी. शर्मा , प्रो. गिरीश त्रिवेदी , प्रो. दयाशंकर तिवारी, प्रो. सनतकुमार व्यास प्रभृति गुरुवर्यों का आशीर्वाद व मार्गदर्शन मुझे मिलता रहा है । अतः यहां उन सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

प्रस्तुत शोध-कार्य हिन्दी विभाग , बड़ौदा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संपन्न होने जा रहा है , अतः विभाग के सभी वरिष्ठ

प्राध्यापक-प्राध्यापिकाओं के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं , जिनमें वर्तमान विभागाध्यक्ष डा. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी , वरिष्ठ रीडर डा. शैलजा भारद्वाज , वरिष्ठ ~~प्राध्यापक~~ प्राध्यापक डा. ओ.पी. यादव , डा. दक्षा मिस्त्री , डा. कल्पना गवली , डा. शन्नो पांडेय , डा. कनुभाई वी. निमामा , डॉ. एन.एस. परमार प्रभृति उल्लेखनीय हैं । लखतर शिक्षा-कालेज की आचार्या डा. मनीषा ठक्कर भी कुछ समय के लिए विभाग में रही हैं और उनके शोध-प्रबंध की सहायता भी मैंने यथा-स्थान ली है , अतः उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं ।

इस समग्र शोध-प्रक्रिया के दरमियान मेरी पत्नी की अहम भूमिका रही है । उसने मुझे निरंतर प्रोत्साहन दिया है । इसके अतिरिक्त मेरे सुहृद मित्रों में अजय महेसूरिया , विजय मोरे और भरत कहार की विशेष भूमिका रही है , जिनके प्रोत्साहन के अभाव में यह कार्य संपन्न करना मेरे लिए बड़ा ही मुश्किल होता । इन सबको यहां दिल से याद करता हूं ।

अंततः इस समग्र शोध-प्रविधि में जो सदैव मेरे साथ रहे हैं और जिनके बहुमूल्य मार्गदर्शन के अभाव में यह पहाड़-सा कार्य संपन्न नहीं हो पाता ऐसे मेरे निर्देशक , मेरे गुरु , परम आदरणीय प्रोफेसर पारूकान्त देसाई साहब के प्रति मैं अपनी श्रद्धा और भक्ति को निवेदित करता हूं । वे इस विभाग के पूर्वाध्यक्ष भी रह चुके हैं । उनकी शिष्य-वत्सलता , ज्ञान-निष्ठा , विद्यानुराग , ग्रन्थ-संग्रह-व्यसन , पूर्णता तथा उच्च लक्ष्य का आग्रह मेरे शोध-पथ को सदैव आलोकित करता रहा है । कई-कई बार वे मुझे फोन से सूचित करते थे कि फलां-फलां पत्र-पत्रिका में तुम्हारे विषय से सम्बद्ध सामग्री प्रकाशित हुई है , जरा देख लेना और उसका कटिंग अपने पास रखना । अतः उनके ऋण से उऋण होना मेरे लिए असंभव है ।

मैं जानता हूं कि पी-एच.डी. उपाधि हेतु किया जाने वाला xxx शोध-कार्य , शोध-अनुसंधान और साहित्यानुशीलन के पथ पर प्रथम सोपान के रूप में होता है । ज्ञान की यात्रा तो अनवरत चलती रहती है । मैं अपनी सीमाओं और सामर्थ्यहीनता से परिचित हूं , अतः भूलों और क्षतियों के लिए विद्वत्जनों के प्रति क्षमाप्रार्थी हूं । xxx मेरा यह कार्य यदि आने वाले अनुसंधित्सुओं और अध्येताओं के मार्ग से यदि एक रोड़ा भी हटा सका तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूंगा । अन्त में विषय के ही अनुरूप निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमता हूं --

"बच्चों की परवरिश और पढ़ाई
पर ध्यान देने के बदले
जो स्त्री कथाओं-कीर्तनों में जाती है
उसकी तुलना में
मैं उस स्त्री को ज्यादा पवित्र
ज्यादा निर्मल और पापरहित समझता हूं
जो अपने बच्चों की पढ़ाई हेतु
स्वयं देह का सौदा भी कर सकती है ।"

दिनांक : 27-8-2007

विनीत ,

प्यारेलाल बी. कहार ,
शोध-छात्र , हिन्दी विभाग ,
म.स. विश्वविद्यालय , बड़ौदा .